नईदुनिया

Date:25-11-19

चुनावी चंदे में पारदर्शिता की दरकार

संजय गुप्त

भारतीय लोकतंत्र के गौरवमयी इतिहास के कुछ स्याह पक्ष है और उनमें से एक है चुनावों में धन का इस्तेमाल। चिंताजनक यह है कि चुनावों में धन का इस्तेमाल बढ़ता जा रहा है। ऐसा नहीं है कि खर्चीले चुनाव केवल भारत में ही होते है। चुनाव प्रक्रिया अन्य अनेक देशों में भी खासी महंगी है, लेकिन ऐसे देशों और खासकर विकसित देशों में चुनावी चंदे की प्रक्रिया कहीं अधिक पारदर्शी है। इसके चलते इन देशों में राजनीतिक दलों और प्रत्याशियों पर ऐसे आरोप बहुत कम लगते है कि उन्होंने चुनाव लड़ने के लिए काले धन या बिना हिसाब-किताब वाले पैसे का इस्तेमाल किया। भारत में ऐसा नहीं है।

चूंकि अपने यहां चुनावों में पैसे की भूमिका बढ़ती जा रही है इसलिए लोगों के मन में यह धारणा घर करती जा रही है कि राजनीति और चुनाव काले धन से संचालित है। ऐसा नहीं है कि चुनावी चंदे यानी धन की जरूरत केवल लोकसभा या विधानसभा चुनावों में ही पड़ती हो। यह जरूरत पंचायतों, स्थानीय निकायों और यहां तक कि छात्रसंघ के चुनावों में भी पड़ती है। इस सच से सभी राजनीतिक दल भली भांति परिचित भी हैं। इस पर तमाम बार बहस हो चुकी है कि चुनावी चंदे की प्रक्रिया को पारदर्शी कैसे बनाया जाए? इस क्रम में समय-समय पर जो कदम उठाए गए वे भी चंदे की प्रक्रिया को पारदर्शी नहीं बना सके।

वैसे तो चुनाव लड़ने वाले प्रत्याशियों को अपने चुनावी खर्च का विवरण हलफनामे के जरिये देना पड़ता है, लेकिन सब जानते है कि यह केवल दिखावटी खानापूरी होती है। तय सीमा से अधिक खर्च करने वाले प्रत्याशी दस्तावेजों में यही दिखाते है कि उन्होंने उतना ही पैसा खर्च किया जितने की अनुमति है। वर्तमान में बड़े राज्यों में प्रत्येक लोकसभा सीट के लिए चुनाव खर्च की सीमा 70 लाख और छोटे राज्यों के लिए 54 लाख रुपये है। इतना धन तो ऊंट के मुंह में जीरा जैसा ही है। आम तौर पर विधानसभा और लोकसभा चुनावों में औसत प्रत्याशी करोड़ों रुपये खर्च करते है, लेकिन समाजवादी सोच के तहत जानबूझकर यह दिखाने की कोशिश की जाती है कि वे कम पैसे में चुनाव लड़ लेते है।

दो वर्ष पहले चुनावी चंदे को पारदर्शी बनाने के लिए चुनावी बांड की व्यवस्था बनाई गई। हालांकि इस व्यवस्था का निर्माण होने के समय ही सरकार की ओर से यह कहा गया था कि यह पूरी तौर पर पारदर्शी नहीं, लेकिन अब उसे लेकर एक विवाद खड़ा हो गया है। इस विवाद का कारण विपक्ष का यह आरोप है कि इस व्यवस्था का लाभ सत्ताधारी दल यानी भाजपा को मिल रहा है। इस आरोप के साथ रिजर्व बैंक की उस आपत्ति का भी जिक्र किया जा रहा है जो उसकी ओर से चुनावी बांड को लेकर जताई गई थी।

सरकार का तर्क है कि रिजर्व बैंक की आपत्तियों का जवाब देकर उन्हें खारिज कर दिया गया था, लेकिन विपक्ष इससे संतुष्ट नहीं। रिजर्व बैंक की आपत्ति पर हैरानी नहीं, क्योंकि खुद चुनाव आयोग का भी यह मानना था कि चुनावी बांड में कुछ खामियां है। चुनावी बांड के मामले में विपक्ष के आरोपों की सच्चाई जो भी हो, इससे इन्कार नहीं कि चुनावी बांड की योजना को बेहतर बनाने की गुंजाइश का जिक्र खुद यह योजना जारी करते समय तत्कालीन वित्त मंत्री अरुण जेटली ने किया था। उन्होंने कहा था कि अगर उपयुक्त सुझाव आए तो उन्हें इस योजना का हिस्सा बनाया जाएगा।

अपने देश में आम तौर पर लोग अपने-अपने राजनीतिक रुझान के तहत राजनीतिक दलों को चंदा देते है और इसे सार्वजनिक करने में उन्हें कोई समस्या भी नहीं होती, लेकिन बड़े उद्यमी और कंपनियां राजनीतिक दलों को चंदा देते समय यह जाहिर करने से बचती हैं कि उन्होंने किसको कितना चंदा दिया? उन्हें भय होता है कि उनका नाम उजागर होने से वे राजनीतिक दल उन्हें निशाना बना सकते है जिन्हें उन्होंने चंदा नहीं दिया होगा। उनकी इसी परेशानी को देखते हुए चुनावी बांड योजना में उनका नाम गोपनीय रखने की व्यवस्था की गई। इस बांड को खरीदने वालों की जानकारी सार्वजनिक नहीं होती, लेकिन बैंक को यह जानकारी रहती है कि किसने किसको चुनावी बांड के जरिये कितना चंदा दिया। जिस समय चुनाव बांड वाली व्यवस्था चालू हुई तब वैसा कोई शोर विपक्षी दलों ने नहीं मचाया जैसा बीते दिनों संसद में मचाया गया।

कांग्रेस की मानें तो चुनावी बांड योजना के जरिये सरकार भ्रष्टाचार कर रही है। इस पर भाजपा का कहना है कि इस योजना का विरोध वही लोग कर रहे हैं जिन्हें वर्षों से भ्रष्ट तौर-तरीके से राजनीति करने की आदत लगी हुई है। सच्चाई जो भी हो, इस मामले में आरोप-प्रत्यारोप उछालने से बात बनने वाली नहीं है। वास्तव में जरूरत संसद के भीतर या बाहर शोर-शराबा करने की नहीं, यह देखने की है कि चुनावी चंदे की ऐसी पारदर्शी व्यवस्था कैसे बने जिससे चुनावों में धन बल का इस्तेमाल कम हो और जनता में यह भरोसा बढ़े कि चुनाव लड़ने के लिए कालेधन का इस्तेमाल नहीं हो रहा है। क्या यह अजीब नहीं कि चुनावी बांड पर सवाल खड़ा करने वाले यह नहीं बता पा रहे हैं कि इस योजना की खामियों को कैसे दूर किया जा सकता है?

एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स की एक रिपोर्ट के अनुसार मार्च 2018 से अक्टूबर 2019 के बीच 6128 करोड़ रुपये के 12,313 बांड बेचे गए। इनमें से एक बड़ी राशि भाजपा के पास गई। शायद कांग्रेस इससे चिढ़ी है कि उसे भाजपा के मुकाबले कहीं कम चंदा मिला, लेकिन उसे यह पता होना चाहिए कि राजनीतिक दलों को चंदा मिलने का एक बड़ा आधार उनकी साख होती है। यदि कोई राजनीतिक दल लोगों की उम्मीदों पर खरा उतरता है अथवा अपनी विचारधारा से उन्हें प्रभावित करता है तो स्वाभाविक तौर पर उसे चंदा भी अधिक मिलता है।

चुनावी बांड पर सवाल खड़े करने वालों को इसकी अनदेखी नहीं करनी चाहिए कि पहले की तुलना में यह व्यवस्था कहीं अधिक पारदर्शी है। पहले तो किसी को कुछ पता ही नहीं चलता था कि किसने किसको कितना चंदा दिया? चुनावी बांड

योजना नोटबंदी के उपरांत कालेधन पर लगाम लगाने के लिए उठाए गए कई कदमों के बाद अमल में लाई गई थी। भले ही कालेधन पर पूरी तौर पर रोक न लग पाई हो, लेकिन इतना तो है ही कि उस पर एक बड़ी हद तक अंकुश लगा है।

बेहतर हो कि कांग्रेस यह देखे कि कहीं उसे कम चंदा मिलने का कारण उसकी गिरती हुई साख और सिमटता हुआ जनाधार तो नहीं है? यदि कांग्रेस यह मान रही है कि चुनावी बांड योजना में खामियां ही खामियां हैं तो फिर उसे उसका बेहतर विकल्प बताना चाहिए। केवल शोर मचाने से न तो उसे कुछ हासिल होने वाला है और न ही भारतीय राजनीति और लोकतंत्र को।

THE ECONOMIC TIMES

Date:25-11-19

In Water Lies the Lay of the Land

Ajay Dandekar, [Director, School of Humanities and Social Sciences, Shiv Nadar University, Greater Noida, Uttar Pradesh]

Today, India's agriculture is undergoing a crisis that, if not addressed, could result in a catastrophe. What is the problem ailing Indian agriculture? Is it limited to dryland farming, or can it also be located in the 'Green Revolution' states? Is the phenomenon of farmers' suicides a manifestation of the deeper malaise in India's agriculture? First, one must contextualise the issues.

The average farm size is reduced to almost 1.13 hectares, and almost 80% of farming households consist of marginal and small farmers. To top it all, low capital formation, starved of credit and investments, depressed prices and fragmented holdings are turning agrarian fields into a lunar landscape.

These problems are compounded by a new reality that is now dawning on policymakers and have further complicated an already complex situation. India is fast running out of water. In fact, it was living off on borrowed time all these years. Today, the issue of water — or the lack of it — and the very survival of the agrarian system is linked in an inseparable way.

Normally, when we think of water, we usually do so in terms of drinking water. The larger question, however, is about the use of water and its availability in the critical sector of food and its primary production. As has been pointed out by the Mihir Shah Committee in its report, India is on the verge of exhausting its groundwater due

to over-exploitation of aquifers. Unless we fundamentally rethink our policy of managing surface and groundwater, along with the rejuvenation of our rivers, we are now looking at the point of no return.

The key to the issue, as the Mihir Shah's report points out, is in sustainable and effective water management. This, in turn, would depend on how effectively water will be used in the agrarian system, and for such a use, what the cropping pattern should be.

The debate on a sustainable cropping pattern that dovetails with the realistic availability of water is not anew debate. It has been argued elsewhere that India now can't afford the luxury of an unsustainable cropping pattern, which is in direct conflict with its agro-climatic zones.

India simply doesn't have the luxury of sowing water-intensive crops in water-scarce areas, and regions that are being irrigated by stored water in dams. Such a practice is, in the longer run, counterproductive.

Farming, as mandated by the nature of agro-climatic zones, would also mean that an effective price mechanism and market support structure will have to be erected; dependence on rice and wheat in our public distribution system (PDS) will have to end; and procurement will have to be local for PDS, the Integrated Child Development Services (ICDS), and midday meal programmes. Only such procurement will sustain the change in the cropping system in the medium run, stabilising the farming system.

India has a complex web of agro-climatic zones. Each zone has its subclimate and precipitation level. This complexity has to be taken on board when a cropping pattern is planned, with the cultivators as its primary stakeholders and adequate support system in prices guaranteed.

In the longer timeframe, agro-based processing industries will have to come up in its diversity, which will create enough employment opportunities for the throwback that is going to come back on land, due to the global lack of demand for manufactured goods.

The time has now come for the 'Green Revolution', riding on a water-intensive crop regime that drove the 'growth paradigm' in agriculture, to give way to a sustainable and durable agrarian system that will ensure generational food security for the country. The alternative scenario is simply too scary to contemplate.

THE TIMES OF INDIA

Date:25-11-19

Overnight coup

Pawar family's internal tussles gave BJP the opening it needed in Maharashtra

TOI Editorials

Ajit Pawar pulled off a long in the works coup against his uncle Sharad Pawar, leading an NCP faction out of the stillborn alliance with Shiv Sena and Congress, into the hands of BJP which played a deceptive waiting game that stunned the opposition. The Saturday morning hush-hush swearing-in ceremony for

Devendra Fadnavis and Ajit Pawar does raise questions about whether the new alignment has the numbers to form a government. But BJP can claim to have drawn first blood while the Sena-NCP-Congress talks dragged on. If the government falls because Ajit's incipient NCP faction loses steam, it would equally be a loss of face for BJP.

Justifying Ajit's crossover, Fadnavis promised a stable government instead of a "khichdi" coalition. Just before the elections, the uncle and nephew were named in an Enforcement Directorate money laundering probe. Even as he converted it into an election issue, Sharad Pawar didn't show the same enthusiasm to defend Pawar Jr. Ajit enacted a resignation drama only to reverse the decision in no time. During the Lok Sabha polls too, rumours of tensions had swirled around the Pawar family.

Ever since NCP surrendered the Maharashtra CM's post to Congress in 2004 despite winning more seats, Sharad Pawar has kept the ambitions of his nephew and other NCP leaders under check while grooming daughter Supriya Sule. Whether it was this fault line or some other that BJP exploited remains unclear yet. Shiv Sena, preparing to assume the CM's post after 20 years, has been left in the lurch.

The voter's mandate was for a BJP-Shiv Sena government but the realignments have paved the way for unwieldy coalitions and political instability. After Goa, Manipur and Karnataka where BJP emerged on top without the numbers the party has gone again, in its usual style, for the jugular. Only a floor test can reveal whether Fadnavis has the majority and governor BS Koshyari's November 30 deadline has created avenues for horse trading. In contrast, undue haste characterised his recommendation to revoke President's rule and the use of prime minister's special powers to allow Fadnavis-Ajit to swiftly assume power. With Supreme Court looking into the matter, the winners and losers of this round will be known shortly.

Date:24-11-19

Sliding economy needs serious structural fixes

SA Aiyar

When Narendra Modi was re-elected, optimists expected GDP growth to accelerate to 8%. Alas, it is plummeting towards 4%, having fallen steadily in the last four quarters — 7%, 6.8%, 5.6% and 5%.

Expect a further fall to almost 4% when the July-September figures come out. The Index of Industrial production was minus 4.3% in September, the worst in a decade, with 17 of 23 industrial categories recording declines. Capital goods output (representing fresh investment) declined 20.7%. GDP growth is approaching the 3.9% low of the Great Recession of 2008-09.

One reason is cyclical. The slowing world economy is pulling India down too. But India also has serious structural flaws that will not mend easily. Unless mended, the new growth normal for India may be closer to 5% than the "miracle economy" benchmark of 7%. Former chief economic adviser Arvind Subramanian once theorised that statistical flaws were inflating official GDP growth by 2.5%. He said the distinct slowdown after 2011 in four indicators — exports, imports, electricity and credit growth — suggested GDP growth was between 3.5% and 5.5%, far lower than the official 7%.

I attacked this analysis saying no country derives growth estimates from just four indicators. He was right to raise doubts about 7% growth, but his estimate of 3.5-5.5 was too low. However, even the official data has now fallen to this range. The problem is not fudged data. India's momentum sustained 7% growth for several years despite poor performance in the four measures because of the gains of internal trade. India failed to reap the gains of international trade, but a big expansion of roads, electricity and telecom to rural areas boosted internal trade between states, producing the economic gains that small countries can gain only from international trade. This sustained 7% growth for some years. But now over 90% of the country has roads, electricity and telecom, so further gains are tapering off. That, combined with global headwinds, has caused a plunge.

In the 2000s, India produced three world-class industries — software, automobiles and pharmaceuticals. In the 2010s, it hasn't produced a single new world-class industry, mainly because of India's lousy educational system. This produces a veneer of excellent graduates along with an army of unemployable semi-literates. The thin veneer was sufficient to create three champion industries in the 2000s, but it cannot create any more. The Economic Survey cried out for educational reform. But nothing has happened since the Budget.

Pending legal cases exceed 35 million, and cases go on forever, so law-breakers have an advantage over law abiders. This flawed judicial system kills honesty and efficiency. Enforcement of contract is critical to market economics but is wrecked by legal delays. The Economic Survey estimated that adding just 2,279 judges in the lower courts, 93 in high courts and one in the Supreme Court would suffice for a 100% case clearance rate. Why has nothing been done about this after the Budget?

India is uncompetitive in most economic inputs. Compared to competitors, India has higher costs of land, labour, capital, electricity, tax rates, rail and air freight. Only one of these — high corporate tax rates — has been tackled so far. Reportedly, the government plans to make larger land banks with environmental clearance available for major foreign investors. This is a partial solution. India needs more liberal land acquisition laws.

The RBI cut interest rates, but this has not transmitted to borrowers. One reason is high interest rates for small savings which seem politically sacrosanct. This must end. High rates for industrial power subsidise farmers and towns. This must end. Besides, discoms are bankrupt in all but name — one reason why the plant load factor of thermal plants has crashed to 48%. Electricity may be the next sector to default massively, extending the banking crisis. Power reforms are a must.

Railway freight rates have historically been kept high to subsidise passenger fares. That hits transport costs and hence exports. This too must stop. So must sky-high state taxes on aviation spirits that make our air cargo rates among the highest in the world.In the short run, there is a case for fiscal stimulus. The fiscal deficit can be allowed to rise to anything up to 4% for this year. But history shows how difficult it is to end a stimulus, so caution is needed on this front. In any event we need to focus more on the long-term than short-term issues. Otherwise the days of miracle 7% growth will be over.

राष्ट्रीय सहारा

Date:24-11-19

बगैर पक्ष करें राज

डॉ. दिलीप चौबे

श्रीलंका के राष्ट्रपति चुनाव के नतीजों ने भारतीय कूटनीति के लिए नये अवसर और चुनौतियां पेश की हैं। पड़ोसी देश में राजपक्षे नेतृत्व (राष्ट्रपति गोटाबाया और प्रधानमंत्री महिंदा राजपक्षे) फिर सत्ता पर काबिज हो गया है। प्रधानमंत्री महिंदा राजपक्षे को राजनीति में महारत हासिल है। तो वहीं उनके छोटे भाई गोटाबाया को सैन्य नेतृत्व का अनुभव है। सैनिक अधिकारी के रूप में गोटाबाया को श्रीलंका की उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र में तमिल उग्रवादी संगठन लिट्टे को पराजित करने का श्रेय दिया जाता है। बहुसंख्यक बौद्ध धर्मावलंबी सिंहलियों के लिए वह युद्धनायक हैं। सिंहलियों को विास है कि गोटाबाया के राजनीतिक नेतृत्व में श्रीलंका की एकता और अखंडता सुरक्षित रहेगी। यही वजह है कि गोटाबाया ने अपने विजय संदेश में साफ तौर पर कहा था कि हम शुरू से जानते और मानते हैं कि इस चुनाव में हमें जो विजय मिली है, उसमें बहुसंख्यक सिंहलियों का प्रमुख योगदान है। लेकिन दूसरी ओर अल्पसंख्यक तमिल समुदाय में बहुत से लोग गोटाबाया को युद्ध अपराधी मानते हैं।श्रीलंका में इसी साल ईसाइयों के त्योहार ईस्टर पर गिरिजाघरों पर सिलसिलेवार हुए आतंकवादी हमलों का असर चुनाव नतीजों पर साफदेखा जा सकता है। लिट्टे के आतंकवाद के कई वर्षो बाद श्रीलंका को इस्लामी आतंकवाद के खतरों से दो-चार होना पड़ा था। इन हमलों से देश में ऐसा जनमत तैयार हुआ कि एक मजबूत राजनीतिक नेतृत्व ही आतंकवाद के खतरे का सामना कर सकता है। राजपक्षे बंधुओं का दोबारा सत्ता में आना इसी जनमत का नतीजा है।भारत ने श्रीलंका में इस राजनीतिक बदलाव पर त्वरित कदम उठाए। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने जहां बिना देर किए गोटाबाया राजपक्षे को जीत पर बधाई दी, वहीं विदेश मंत्री एस. जयशंकर ने अचानक पड़ोसी देश का दौरा किया। भारत श्रीलंका के नये नेतृत्व को यह भरोसा दिलाना चाहता था कि उसकी ‘‘नेबर फस्र्ट’ यानी पड़ोसियों को प्राथमिकता देने की नीति में श्रीलंका का विशेष स्थान है। नवनिर्वाचित राष्ट्रपति गोटाबाया ने भी भारत के इस कथन का उतनी ही गर्मजोशी से प्रतिउत्तर दिया और वह अपनी पहली विदेश यात्रा पर 29 नवम्बर को भारत आ रहे हैं। एस. जयशंकर ऐसे पहले विदेशी प्रतिनिधि थे, जिन्होंने श्रीलंका के चुनाव नतीजों के तुरंत बाद वहां का दौरा किया। उनकी यात्रा का मकसद गोटाबाया का समर्थन और निर्वाचन प्रक्रिया का अनुमोदन करने के साथ वहां की नई सरकार के साथ मिल-जुलकर काम करने की सदिच्छा जाहिर करना था।श्रीलंका में हुए इस राजनीतिक बदलाव से चीन भी काफी खुश है। महिंदा राजपक्षे को चीन समर्थक नेता माना जाता है। वह जब राष्ट्रपति थे, तब उन्होंने चीन को बहुत सारी सहूलियतें दी थीं। उसी दौरान हिन्द महासागर में चीनी नौसैनिकों की गतिविधियां बढ़ी थीं। भारत को यह आशंका थी कि चीन के युद्धपोत और पनडुब्बियां श्रीलंका के बंदरगाहों का उपयोग कर सकते हैं। चीन भारत की तरह ही श्रीलंका में विकास परियोजनाओं के क्रियान्वयन में मदद कर रहा है। उसकी वन बेल्ट वन रोड (ओबीओआर) परियोजना में श्रीलंका भी शामिल है। आने वाले दिनों में यह स्पष्ट होगा कि गोटाबाया राजपक्षे भारत और चीन के बीच अपने संबंधों में कैसे संतुलन कायम करते हैं? श्रीलंका का नेतृत्व इस तय की अवहेलना नहीं कर सकता कि भारत उसके भूभाग से बहुत निकट है तथा अल्पसंख्यक तमिल समुदाय भारत के तमिलनाडु राज्य से लगाव रखता है। श्रीलंका के आर्थिक विकास के लिए भी भारत के दक्षिणी राज्यों का बहुत महत्त्व है।राजपक्षे बौद्ध सिंहली राष्ट्रवाद की लहर पर चढ़कर सत्ता में पहुंचे हैं।

वह भारत और चीन के साथ संबंधों में संतुलन कायम करके अपने देश की स्वतंत्र विदेश नीति बरकरार रख सकते हैं। भारत में प्रधानमंत्री मोदी भी अनेक पक्षों से एक साथ अच्छे संबंध कायम करने की विदेश नीति पर अमल कर रहे हैं। भारत को श्रीलंका और चीन के विकासपरक संबंधों पर कोई आपत्ति भी नहीं होगी। भारत का आग्रह केवल इतना होगा कि श्रीलंका हिन्द महासागर में चीन को अपना असर बढ़ाने के लिए सहायता न दे क्योंकि यह भारत की सामरिक सुरक्षा से जुड़ा हुआ महत्त्वपूर्ण मुद्दा है। लेकिन राजपक्षे की भारत नीति को अनुकूल कैसे किया जाए, भारतीय कूटनीति के लिए चुनौतीपूर्ण होगी।